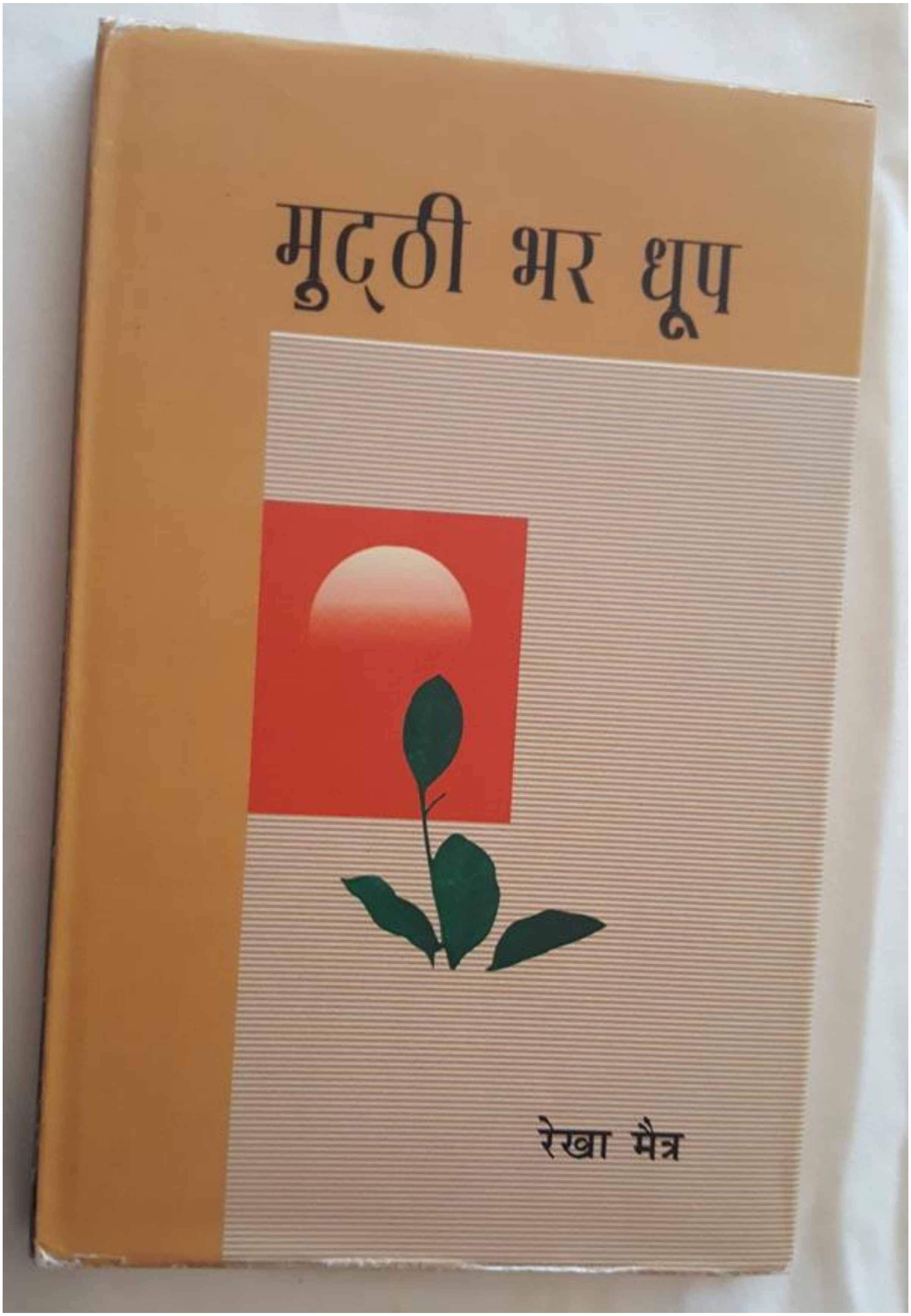
मुट्ठी भर धूप
रेखा मैत्र

कविता के बारे में...

हम उर्दू वालों को आज की हिंदी कविता पढ़कर थोड़ी देर के लिए एक झटका तो ज़रूर लगता है, मगर बस थोड़ी देर के लिए मैं इसका कारण बताता हूँ। उर्दू में आज़ाद नज़्म की रिवायत ज़रूर मौजूद है, लेकिन यह आज़ाद नज़्म उन पाबंदियों से आज़ाद नहीं है जो ग़ज़ल को बहुत मज़बूत रस्म ने उर्दू कविता पर लगा रखी है। इसके विपरीत आज की हिंदी कविता छन्द-विच्छेद की उस मंज़िल पर खड़ी है, जहां निराला और महादेवी वर्मा की कविता भी हैरान परेशान दिखाई देती है।

रेखा मैत्र आज की हिन्दी कविता की उस पीढ़ी से ताहलुक रखती है जिसने पहले ही दिन से छन्द की क़ैद बर्दाशत करने से इंकार कर दिया। उनकी शायरी भावना प्रधान है। लेकिन अजीब बात है कि कविता की पाबंदियों से बगावत के बावजूद उनकी शायरी बग़ावत की शायरी नही है। इसमें एक अजीब रोमांचक सौंधापन है वही सौंधापन जो धूप में झुलसती गांव की ज़मीन से सावन की पहली बर्खा के बाद फूटती है। मैंनें 'उस पार, भी पढ़ी', 'रिश्तों की पगडंड़िया' भी और 'पलों की परछाइयाँ, और तीनों की कविताओं में वही सौंधापन पाया और अब उनका चौथा कविता संग्रह 'मुट्ठी भर धूप' मेरे सामने है और इसकी कविताऐं भी आगे सौंधी ख़ुशबू से महक रही है। मध्य प्रदेश के छोटे से शहर से वह अमेरिका के गगन चुंबी तक यह महक कैसे समेट कर ले गयी और उसे कैसे अब तक संजोय हुए है यह अपने अंदर खुद एक कविता का विषय है।

'मुट्ठी भर धूप' पढ़कर भी यह अंदाज़ा होता है कि रेखा मैत्र के अन्दर एक छोटी से बच्ची छुपी

शेष अगले फ्लैप पर.........

हुई है जो दुनिया और दुनिया की घटनाओं को बड़ी हैरानी और मासूमियत से देख रही है, जैसे वह समझना चाहती हो कि यह सब क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है?

एक अर्से से मेरी घड़ी ने
काम करना बंदकर दिया था,
फिर भी वह मेरी कलाई में बंधी रही।

(बिसरता समय)

अब सोचती हूं
तो लगता है
तुम्हारा जाना ही शायद
तुम्हारी यात्रा के लिए ज़रूरी था।

दरख़्तों से तो ऐसी आशा
नहीं थी मुझे
राहगीर को पनाह देने वालें
तुम ऐसे निर्दयी कैसे बने?

(बदलाव)

ऐसी लगातार मिसालें दी जा सकती हैं रेखा के कलाम से। कहते हैं कवि से मुलाकात उसकी कविता में होती है लेकिन जिस इंसान को कवि कहते है अक्सर वह अपनी कविताओं की तरह निर्मल और कोमल नही होता। रेखा इस कथन को भी नकारती है। उनसे मिलिए तो मुलाक़ात उसी छोटी सी बच्ची से होती है (थोड़ी देर बाद) जो उनके अंदर छुपी हुई कविताओं की फुलझड़ियां छोड़ा करती है। मुझे यक़ीन है कि 'मुट्ठी भर धूप', वाशिंगटन से हिंदी साहित्य में अपना उजाला ज़रूर फैलाएगी।

— हसन कमाल

अपनी बात

कवि और कल्पना का गहरा सम्बन्ध सर्वविदित है, पर मेरा भीतरी कवि कल्पना से ज़्यादा वास्तव से ही जागता है। मेरी कविताएँ शायद मानव सम्पर्क में ही रूमानियत तलाश करती हैं। दूर-दूर तक फैले मानव सम्पर्क के धरातल पर ठण्डेपन की जो खाइयाँ फैली हैं, उन्हें पाटते हुए ऊष्म धूप की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ अंजली में बटोरते हुए मेरी काव्य की यात्रा आगे बढ़ती है। उसी यात्रा का एक उपलब्ध क्षण 'मुट्ठी भर धूप' अपना पाँचवाँ कविता संग्रह आपके हाथों में सौंप रही हूँ! उष्णता आप तक पहुँचती है या नहीं—ये निर्णय आपका है!

अन्त में मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ शिकागो के कुछ मित्रों की, जिनकी वजह से मेरी कविताओं की रचना सम्भव हो सकी और उनके नाम हैं—देवी, प्रिया रॉय, मीता बोस, साधना सचदेव और इन्दु जैन! इनके सहयोग की मैं ऋणी रहूँगी! सात समुन्दर पार मैं कृतज्ञ हूँ प्रमिला भटनागर, सेठ परिवार, अपने प्रकाशक और पाठकों की, जिन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाया!

—रेखा मैत्र

आशीर्वाद

पहले-पहला उसे
भारत में देखा था
सुन्दर-सी मासूम दो आँखें
अपनी घनी पूँछ से
आस-पास बुहारती सी
पीठ पर तीन सीधी धारियाँ सी
बहुत ही खूबसूरत लगी थीं!

हाँ, उन रेखाओं के माने जब पूछे
पता चला, भगवान राम ने
अपना आशीर्वाद इनकी पीठ पर
आँका था, इन रेखाओं की सूरत में।

असत् पर सत् की विजय हेतु
लंका पर चढ़ाई कर दी, राम ने
लंका तक जाने और सागर बाँधने के
आयोजन में इन्हीं गिलहरियों ने नन्हें पाथरों से
मदद की राम की!

अमरीकी गिलहरियाँ वंचित दीखीं
उस आशीर्वाद से
कौन जाने तब तक
ये प्रवासी हो चुकी हों!

अमोल घुट्टी

लोग तो अपने बच्चों को
क्या-क्या जड़ी बूटियाँ
घुट्टी में घोल कर पिलाते हैं
ताकि नन्हा शिशु स्वस्थ
और तन्दुरुस्त बन सके।
तुम्हारे पास मेरे लिए
ऐसा कुछ कहाँ था?
तब भी कुछ ऐसा
तुम्हारे पास जरूर था
जो आम लोगों के पास
होता नहीं है।
तुमने वही कुछ
दूध में घोल कर
मेरे लिए एक
अनोखी घुट्टी तैयार की थी।
तुमने मुझे दूध में
अपनी हँसी घोल कर पिला दी।
कृतज्ञ हूँ तुम्हारी इस अमोल घुट्टी की!

आनन्द

अक्सर तुम्हें कहते सुना है
दूसरों के दम पर
आनन्द उठाना
आता है मुझे
कैसे बताऊँ तुम्हें
आनन्द सिर्फ
अपने दम पर ही
उठाया जा सकता है!
आनन्द तो भीतरी अनुभूति है
वो बाहर से आ नहीं सकती न!

अण्डमान द्वीप की शाम

दूर क्षितिज पर लाल लकीर
माँग के सिन्दूर सी चमक जाती थी!
सारी सृष्टि एक साँवली
दुलहन सी दीख पड़ती थी!
माथे की बिन्दी सा
सूरज झिलमिला जाता था!
मैं इस टापू से
दूर आती जा रही थी!
दुलहन की विदाई की
उदासी दूर-दूर छायी थी!

अनुभूति

मेरे आस-पास
तुम्हारे होने की अनुभूति
घोर शीत में
पश्मीने के शॉल सी
कोमल, मुलायम
गरम और आराम देह
मुझे लपेटे-सी रहती है!
कभी जब तुमसे दूर
किसी सफ़र पर जाना हो
तो बन आती है
सुरक्षा कम्बल सी सुकून देह!
तब मैं अनुभूति के घूँट
पीती हूँ उसी तरह
जैसे कोई शराब पिया करे
धीरे-धीरे, एक-एक घूँट!
जैसे कभी शराब हावी होती है
उसी तरह कोई लम्हा भी असंयत करता है कभी!

अपरिचित अनुभूति

आज अपरिचित शहर में
अपरिचित-सी अनुभूति भी हुई थी
किसी व्यक्ति, किसी देश से असंलग्न
अलग-थलग को खड़ी
इन दरख्तों जैसी
तुम चाहो तो दुलारो इसे
ये महसूस तो कर सकता है
कह नहीं सकता!
अनुभूति तो होती ही गूंगे का गुड़ है
हाँ, इन्हें छुआ जा सकता है
यानि इनके शरीर होता है
वाणी नहीं होती!

एक्वेरियम

एक्वेरियम में सैर करती
दो मछलियाँ
एक सुनहरी एक रुपहली
एक्वेरियम के शीशे पर पड़ रहे
अपने ही प्रतिबिम्ब को चूमतीं
प्यार करतीं!
आस-पास घूमती दूसरी
जीवित मछली के
अस्तित्व से
एकदम बेखबर
कैसी विडम्बना है!
स्वयं सा ही चाहिए प्रिय
चाहे हो जीवित
अथवा हो काल्पनिक!

बदलाव

बर्फ़ के इस भुतहे सन्नाटे में
नंगे से खड़े लम्बे-लम्बे
वृक्षों की शाखें, क्षितिज के आस-पास
बर्छियों-सी दीखती हैं!

लगता है आकाश के
नीले आँचल को
छेद कर रख देंगे।

दरख़्तों से तो ऐसी आशा
नहीं थी मुझे।
राहगीर को पनाह देने वाले।
तुम ऐसे निर्दय कैसे बने?

बदलते मौसमों ने
इनको भी बदल डाला है शायद!

बारूद

आजकल मेरे आसपास
तुम्हारी उपस्थिति
बारूद के गोले की सी होती है!
तुम्हें थोड़ा-सा खुश
रखने की कोशिश में
कुछ भी हल्का-फुल्का, कहा-सुना
कब ईंधन का काम
कर जाए, पता नहीं!
बम जब फटेगा।
ज़रूर मुझे भी
अपनी चपेट में ले लेगा
हैरानी है,
मुझे खुद को बचाने की
फ़िक्र तो नहीं होती
हाँ, ये जानने का
अक्सर जी करता है
इतनी बारूद
इकट्ठी कैसे हुई?
या इस आग पर
कौन-सा जल डालूँ
जो ठण्डी हो जाए!

बेल काल की...!

काल की लम्बी-फैली
बेल से कुछ पल
काट लिए मैंने
हरे-भरे, ताज़े-ताज़े से
सड़े-गले हिस्से की
काट-छाँट कर डाली
देखो न
फिर से यह पूरी लता
हरिया गयी!

भाभी के लिए...!

जो तुमसे देर तक
आँखें चुराती रही
तुम्हारी उपेक्षा की मंशा
नहीं थी मेरी
मैं चाहती नहीं थी कि
मेरी आँखों में उमड़ती
दर्द की नदी तुम्हें दीख जाए
मालूम था मुझे
देर से रोका गया
बाँध जब टूटेगा
तो कोई कूल-किनारा
नहीं मानेगा
फिर तुम भी दुखोगी
और मैं भी
तुम मेरे दुःख से
और मैं पछतावे से!

भरत-मिलाप

सुनी तो बहुत थीं मैंने
मौन सम्भाषण की बातें
पर, तब वो मेरा
अपना तजुर्बा नहीं था
भीगी आँखों से जब
तुमने मुझे गले लगाया
तभी मैं जान पायी कि
ऐसे ही कबीर ने सूफी
सन्त से मौन वार्तालाप किया होगा
तुम्हारी देह की सुगन्ध में
मेरे नन्हे की महक आ मिली थी
उस भरत-मिलाप को मेरा
शत्-शत् नमन!

भ्रूण

उदासी का भ्रूण
इन नौ महीनों
मेरे भीतर पलता रहा।
अब तो इसकी
चहलकदमी की
आदत बन जानी चाहिए
पर बनी नहीं!
मेरे अन्दर इसकी दौड़-धूप
मुझे बेचैन ही बनाती रही
उत्सुकता होती है ज़रूर
जब ये बाहर आएगा
इसकी सूरत कैसी होगी?
मासूम या भयानक?

बुझा हुआ दिन

बुझा हुआ दिन
नीली झील-सा
शाम का आँचल फैला
दिन की तपस को समेटता
रात की स्याह बाँहों में डूबता-सा लगा!
साँवली सड़कें रोशनी की कन्दील उठाये
साँझ के मिलन जश्न में शरीक हो गयीं!
मेरे लिए एक जलता हुआ दिन
खट्ट से बुझ गया!
और अब, सन्नाटा-सा खिंच गया
जो देर मेरे चारों ओर
कैद की सलाखों-सा घिरा होगा!
मुझे जलती हुई व्यस्तता से भीगी
सुबह की फिर तलाश रहेगी!

शिकागो

एक बार फिर मुझे
इस शहर को छोड़ना होगा!
पहले जब जाना था–
तब आने के लिए जाना था!

अब, जब जाने के लिए जाना है
तो कठिनाई पैदा होने लगी!

इस सर ज़मीन पर बिछी
ढेरों स्मृतियों को
रौंद कर जाना होगा!

यहाँ की धुली-निथरी भोर से
वहाँ की सुबह अलग सी होगी
यहाँ का उजला चाँद
वहाँ के आकाश में
वैसा कहाँ चमकेगा?

वाशिंगटन की शबनम
क्या ऐसे हँसते हुए
रोज़ मेरा अभिनन्दन करेगी?

मेरे आस-पास का परिवेश
यूँ ही अच्छे-बुरे का

साथी बनेगा?

ऐसे ढेरों सवाल
सर उठाये खड़े हैं
और, जबाब नदारद!

चिरनिद्रा

देर तक भटकते-भटकते
आज एक महकता उद्यान दीखा है!
शाम का झुटपुटा है
पलों के जुगनू उड़ रहे हैं
यहाँ से वहाँ!
लोगों का शोर
शोर तो नहीं, झींगुर की
सुरलहरी-सा लगता है।
माहौल के आकाश में
ढेर सारे तारे टिमटिमा उठे हैं।
आज की रात—
चिरनिद्रा में सो जाऊँ तो?
बहुत मीठी मौत होगी वो!!!

डेण्डेलाइन

हरी-हरी मखमली घास में
पीले-पीले ये डेण्डेलाइन के फूल
गली के आवारा बच्चों से
जब तब अपना सिर उठाये
झाँकते से दीखते हैं!
कितना ही जड़ से उखाड़ो इन्हें
झिलमिलाती धूप में
हँसते-खिलखिलाते
बच्चों से चले आते हैं!
शाम होते-होते, सूरज के छिपते ही
अपना भी मुँह छिपा लेते हैं!
नन्ही सुबह से मुलाकात करने
हर रोज आ पहुँचते हैं।
मेरा हाथ जब इन्हें उखाड़ता है
मेरा मन भीतर तक टीस जाता है!
कैसी विडम्बना है,
जिन फूलों को चुन-चुन कर लाते हैं
उनकी देख-रेख तो
बड़े जतन से करते हैं
अनायास अतिथि को
जड़ से उखाड़ देते हैं!

मुट्ठी भर धूप
शमीक और प्रतीक के लिए

—माँ

ढीठ दिन

बड़ा ढीठ होता है
कोई-कोई दिन
उसे सरकाना होता है
बड़ी हिम्मत का काम
शब्दों के पहाड़ जमा
होते जाते हैं, छाती पर
सख़्त, खुरदुरे पत्थरों से
शब्दों के नीचे
शताब्दियाँ दबी पड़ी होती हैं!
और उनके नीचे पड़े दिन
जब हिलने का नाम नहीं लेते
तब बुलाती हूँ
कुछ पुराने प्यारे दिनों को
वो ज़रा हाथ लगा देते हैं
तो ये लम्बे दिन
खिसकते हैं किसी तरह!

एक शाम

कल साँझ तुम
क्या अपने लिए
मेरे पास आये थे?
ऐसा अनुमान दिया
तुमने मुझे जैसे
अपने ही कन्धों पर
ढेर सारा बोझ लादे
घूम रहे हो इन दिनों!
मुझे वह सौंप कर
तुम्हें मानों निश्चिन्त
हो जाना हो!
पर, सुनो!
निश्चिन्त क्या
खाली तुम हुए?
एक कोलाहलमय
भोजनालय में
शान्त-सा कोना तलाशा!
हमने अच्छा-सा
खाना खाया!
अच्छा-सा
चलचित्र देखा!
फिर, अपनी हँसी की
फुहारों से
दुःखों के

कूड़े-कंकड़
बहा दिए!
अब, हम दोनों ही
पहले से कहीं ज्यादा निर्मल हो आये हैं!

एक तसवीर अमिताभ दा. की...!

सोचा था—
कुछ लिखूँ, आपके लिए
ख़याल आया—
आपने कहा था
इस पार से देखने से
उस पार के पेड़
ज़्यादा ही हरे दीखते हैं
यानि, दूर से देखने से
सही तसवीर नहीं उभरती!
आदमी को भी—
दूर से देखो तो कुछ
पास से देखो तो और कुछ
डाब की तरह है
आपका व्यक्तित्व
ऊपर से सख़्त
भीतर से एकदम नरम!
कहूँ आपसे—
कृतज्ञ हूँ
इन कुछ दिनों के लिए!

□□

गाँव की साँझ

शाम, सुरमई साड़ी में सजी
सूरज का केसरिया फूल
अपने जूड़े में टाँके
सन्ध्या वन्दन को चली!
घर लौटती गायों के गले में
पड़ी घण्टियाँ पूजा की
घण्टियों-सी बजने लगीं!
जुगनुओं के हज़ारहा दीप
जमीन के दीप दान में
जगमगा उठे!
झींगुरों की आवाज़ें
मंजीरों सी, कानों में
बजने लगीं।
बेले के फूल
प्रकृति की थाली में
इलायची दाने के
प्रसाद से सज गये।
ऐसे में मन
मिसरी की डली सा
मीठा हो आया!

गेंद

कभी-कभी, किसी-किसी की
ज़िन्दगी गेंद की
मानिन्द भी गुज़रती है!

उसकी भी कुछ ऐसी ही कटी
दूध पीती बच्ची ही थी
दादी की गोद में उछाल दी गयी!
उसके सारे नाते-रिश्ते गड़बड़ा गये!

दादी को माँ कहती
माँ को चाची
लोग हँसते, उपहास करते
तो लाचार-सी ताकती!

अभी स्थिति को समझा ही था
चाची बनाम माँ के पास
फेंक दी गयी!

माँ से नज़दीकी न महसूसना
उसकी विवशता-सी हो गयी!
जिसे न माँ समझी, न वो समझी!

फिर देर तक उस वक़्त का
इन्तज़ार किया उसने

जब उसे स्थायित्व मिलना था!
पर, ब्याह के बाद
पति की व्यवसायी ज़िन्दगी की
आहुति चढ़ना होगा उसे
उसने सोचा न था!

अब वो विद्रोहिणी थी
ज़िन्दगी की गेंद को
पकड़ रखने का अभ्यास
धीरे-धीरे होने लगा था!

घिसटता समय

एक अर्से से मेरी घड़ी ने
काम करना बन्द कर दिया था!
फिर भी वो मेरी
कलाई में बँधी रही!
यानि उसकी कोई
उपयोगिता बाक़ी नहीं बची थी
वक़्त भी कुछ वैसे ही
बेवजह-सा, दिशाहारा-सा
गुज़र रहा है
चाँद-सूरज के आने-जाने का क्रम
बदस्तूर चल रहा है।
समय घिसट रहा है इन दिनों।
कहीं पुरानी घड़ी की तरह
मेरी भी उपयोगिता चुक तो नहीं गयी?

गुलज़ार

कभी-कभार ऐसा भी होता है
देर तक एक इनसान को देखते हैं
कोई राय नहीं बना पाते, उसके बारे में!
उसका अपना ही साँचा होता है
न अच्छा, न बुरा
न सरल न जटिल
तब व्यक्ति हमारे सामने
एक सवाल बन कर
खड़ा हो जाता है
सो, गुलज़ार हैं
मेरे लिए एक प्रश्नचिह्न
तलाशूँगी जवाब
उनकी ही कृति में!

इन दिनों...

मेरा कम्प्यूटर अक्सर
वायरस से पीड़ित रहता है।
न कोई सूचना लेता है!
न कोई सूचना देता है!
यानि मेरा हर कहना
मानने से इनकार कर देता है!
मेरे दिमागी कम्प्यूटर ने भी
अब यही रुख अपनाया है!
इसने भी चलने से
मना कर दिया है!
कम्प्यूटर तो इनसानी ईजाद है
उसे दुरुस्त करने तो भेजा जा सकता है।
पर, दिमागी कम्प्यूटर का क्या करूँ?
यही एक बड़ी समस्या खड़ी है!!

जाना, तुम्हारा...!

तुम तो चले गये
चले तुम्हें जाना ही था
पहले—बहुत पहले!
शायद मेरे मोह ने ही
तुम्हें बाँध रखा था!
अब सोचती हूँ
तो लगता है
तुम्हारा जाना ही शायद
तुम्हारी यात्रा के लिए ज़रूरी था!

जब खुद ही डूब रहा है...!

संवेदनाएँ अभी भी
लोगों में बाकी बची हैं।
अच्छे इनसान आज भी
इधर-उधर दीख जाते हैं!
कभी-कभी तो कोई-कोई
एक-दूसरे की मदद को
हाथ भी बढ़ा देता है!
अक्सर लावारिस मुर्दे को
ठिकाने लगाने के लिए
भीड़ भी लगी दिखाई देती है!
फिर ऐसा क्यों है जो आज
अलग-सा, मशीनी-सा दीखता है आदमी!
कहीं तनाव का घेरा
इतना तो नहीं फैल जाता
कि आदमी उसमें
डूबता चला जाता है!
बेचारा जब खुद ही डूब रहा हो
तो दूसरे को कैसे बचाये?

जीवन का व्याकरण

जैसे जटिल विषय बाज़ारों में
कुंजी सहित बिकते हैं
जीवन को सरल करने की
कोई किताब मिलती
तो, तुरत ख़रीद लेती!
सर खपाते-खपाते
उम्र जाने को आयी
पर, समस्या है कि
सुलझने का नाम ही नहीं लेती!
अक्सर ही अनजाने कारणों से
तुम्हें कछुए की तरह
अपने खोल में घुसते पाती हूँ
और मेरी सारी ऊर्जा
स्याही के सोख्ते सी
सोख ली जाती है।
इसे निचोड़ो भी तो
स्याही कहाँ वापस आएगी?
और मेरी ऊर्जा...?

जुगनू पलों के...!

लम्हे भी उड़ते हैं कभी
आसमानों में पंछियों की तरह
देर तक नाम भी परिन्दों से
चहचहाते हैं वहाँ!
पलों की आहट-खुसपुसाहट
होती है मन के गगन में।
आकाश में फैले-बिखरे रंग
दिलों में इन्द्र धनुष बुनते हैं।
पल-छिन जुगनुओं की तरह
कभी जलते हैं, कभी बुझते हैं!

जंगल दिशा मेरी...

यादों के जंगल में
मैं कब और कैसे आयी?
पता नहीं!
इससे बाहर निकलने का
रास्ता कहाँ है?
पता नहीं!
मालूम है तो इतना
राह अगर खोज नहीं पायी
तो जंगल को ही मुझे
घर बनाना होगा!

ख़ामोशी

यूँ भी होता है कभी
देह-मन के रोम-रोम से
वाणी फूट पड़ती है!

कम्बख़्त ज़ुबान ही है
जिसमें ताले पड़ जाते हैं!

एक तुम हो जो
मेरे बोलने की
प्रतीक्षा किया करते हो!

अब तुम्हीं कहो
संचार का सिलसिला
बनें तो कैसे बने?

खोए हुए पन्ने

मेरी कविताओं के लिए
लिखे गये खोए हुए पन्ने
जैसे आपको मिल गये हैं
कहीं ऐसे ही मेरी तक़दीर
जो इन दिनों कहीं खो गयी है
मुझे मिल जाती
तो बात बन जाती
आपने तो दफ्तर की तलाशी ली
और कागज़ बरामद
पर, अपनी तक़दीर को
कहाँ-कहाँ तलाशूँ
कुछ पता नहीं
कोई सुराग़ नहीं!

ख़्वाब

ज़िन्दगी के तकिये के गिलाफ पर
हर पल ख़्वाब काढ़े हैं मैंने!
कमबख़्त धागे ही हमेशा
धोखा दे गये हैं मुझे!
ख़्वाब धुलते जाते हैं
फीके पड़ते जाते हैं!
प्रभु, मुझे तो जो दिया सो दिया
झोंपड़ों में बसती लड़कियों को
पक्के रंग ही देना!
ताकि मैं तुम्हें माफ कर सकूँ!

कौए

सोचा है जितनी बार
मैंने तुम्हारे बारे में
तुम्हारे प्रति लोगों की उपेक्षा ने
वितृष्णा भर दी है मन में!
देशान्तर को गये
पंछियों के सामने
चुनौती से खड़े हो तुम
पलायन प्रवृत्ति नहीं है तुम्हारी
कोई भी चिड़िया
कहीं भी आये-जाये
डट कर लोहा लेते हो
तुम, हर मौसम से
आलसी नहीं तुम
कोयल जैसे
सेते हो उसके भी अण्डे
अपने नन्हों जैसे
एक कर्मयोगी-सा जीवन
तुम जीते हो।

लट्टू

इस शहर से विदा लेते हुए लगा—
यहाँ की दौड़ती गाड़ियों-सा
मन भी भाग रहा है तेज़ी से
दिमाग़ के पर्दे पर
बिताये गये दिन
घूम गये एक लट्टू से
अब सफर शुरू हुआ
आहिस्ता-आहिस्ता
सरकने वाले दिनों का
या रुके-से समय का
अब घड़ी तो चलेगी
पर चलेगी नहीं!
उसमें सिर्फ प्रतीक्षा होगी
आने वाले समय की!

लन्दन का हवाई अड्डा

पल-पल ये जलती-बुझती रोशनी
जीवन में होते अँधेरों-उजालों का अहसास दिलाती!
ढेरों लोगों का सामूहिक शोर
भीतर के कोलाहल की
प्रतिध्वनि-सी लगती!
ये लाल-हरी बत्तियाँ
देखो तो लगे
ज़मीन के ढेर सारे गहने
हठात् जगमगा उठे!
आस-पास ये उड़ते विमान
मानो ज़मीन के
पंख उग आये हैं!
अपने सौन्दर्य पर इतराती
धरती उड़ चली!

लॉसएंजेलस

ये शहर एक अभिमानी नारी-सा लगा!
कभी जलपरी-सा असीम उदार
हाथ बढ़ाये गले लगाने को व्याकुल
तो कभी दूर-दूर फैले सागर के
फेनिल जल से चरण धोता-सा
कभी वसन्त को बारह मास ओढ़ता-बिछाता
या फिर अपने ऊँचे पर्वतों के
उन्नत शिखर पर इतराता!
और कभी जब इसका मन उदास होता
तो सारा कुछ मरुभूमि में तब्दील हो जाता!
ढेर सारी विषमताओं से भरा ये लॉसएंजलस
सचमुच ही क्या यहाँ कोई देवदूत खो गया है?
या कि कोई जलपरी?

मौत किश्तों में...!

कभी-कभी मौत भी किश्तों में होती है शायद!
तुम्हारी मृत्यु भी आहिस्ता-आहिस्ता हो रही है!
एक-एक अंग को तिल-तिल मरते देखना
मेरी नियति की विडम्बना बन गयी है
तुम अकेली मेरी ही ज़ायदाद तो नहीं
सो, तुमसे बावस्ता निर्णय भी
आठ भागों में बँट गये हैं।
अभी-अभी सुनने में आया है
तुम्हारे मस्तिष्क का निचला हिस्सा अब नहीं रहा!
कुछ ही देर पहले सुना था
तुम्हारे गुर्दे ठीक काम नहीं कर रहे!
हृदय का स्पन्दन अभी भी बाकी है।
वही तय कर रहा है
तुम्हारा होना!
सच पूछो तो, मुझे नहीं मालूम
तुम हो या नहीं?
वैसे भी पार्थिव शरीर का होना
अब मेरे लिए बेमानी है!

[पूज्य माँ को समर्पित]

मेहमान

मुसीबत आमतौर पर
अपने साथ संगी-साथी
लिये आती है।
ये मेरे आतिथ्य का क़माल है
या मेरे भाग्य का खेल
मेरे पास तो समूची बिरादरी
सहित आ विराजी है!
अपने अतिथि को
विदा भी नहीं कर सकती
अपनी संस्कृति जो
आड़े आ जाती है!

मेहमान भगवान जो होते हैं
उनके सत्कार में कोई त्रुटि न रहे
सो, इन दिनों मैं
अपने प्रभु को सेवा में संलग्न हूँ!

मूँगा द्वीप

अँगूठी सा गोल
मूँगा द्वीप देखा
धरती की उँगली में मानो
पानी के बदलते रंग
नीलम और पन्ने से
झिलमिला उठे!

जेल के इस पार
इतना सौन्दर्य द्वीप का
और, उस पार
इतनी मानवीय पाशविकता...!

इस नीले द्वीप ने
कैसे समेटी होंगी
वीरों की अनगिनत लाशें
पानी क्या इसी से
नीला हो आया है?

कश्ती तो द्वीप में
बढ़ती गयी आगे-आगे
मन मेरा खिंचता गया
पीछे और पीछे!

नाव की तलहटी के

काँच से देखा मैंने
सागर के भीतर उगे
रक्तिम प्रवाल थे!

शायद वो ही लाशें
मूँगों की सूरत में
सर उठाये समन्दर से
उन कायरों को
चुनौती-सी देती हैं।

प्रणाम किया उन्हें मैंने
लौटते में लगा मुझे
महातीर्थ से लौटी हूँ!

[अण्डमान द्वीप प्रवास के दौरान लिखी कविता—भारत पर ब्रिटिश शासन काल में राजनीतिक कैदियों को अण्डमान के जेल में आजन्म कारावास दिया जाता और मृत्युपरान्त उनकी लाश द्वीप के जल में फेंक दी जाती थी!]

मुकुट

तुमने जो मुझे प्रेम के
काँटों का मुकुट पहनाया
मैं हैरान-सी रह गयी थी!
दीन-दुनिया में इतने
खूबसूरत इतने खुशबूदार
फूलों के रहते
इन काँटों को ही चुना
तुमने मेरे लिए!
क्या तुम्हें इनकी
तासीर का नहीं पता
छेद कर रख देंगे
ये मेरे अस्तित्व को!
अब लगता है
तुम्हें पता था
तभी तो तुमने
उनसे मेरा ताज सजाया
फूलों की नियति तो
खिलना और मुर्झा जाना है
ये काँटे ही हैं
जो सदाबहार हैं!

मुट्ठी भर धूप

मुट्ठी भर धूप की
तलाश में, इस ठण्डे शहर में
मारी-मारी फिरी!

कहीं उसका निशान तक नहीं
सब तरफ बर्फ़ और बर्फ़
सर्दी से ठिठुरती रही।
तन से भी, मन से भी!
तभी तुम थके-हारे
मेरे पास चले आये।
तुम्हारे कन्धे पर अपना हाथ रख दिया मैंने!

तुमने बताया
मेरे हाथों में धूप-सी उष्णता है
और...!
एक नन्हा-सा सूरज
मेरे भीतर उग आया
तब से धूप की बाहर तलाश बन्द!

नज़दीकियाँ

तुम्हें किसी की कविता
केमरे से उतारी तसवीर-सी
स्वच्छ दीखती है!
तो किसी की चित्रकार की
सधी तूलिका से आँकी
पेण्टिंग-सी नज़र आती है!
और मेरी कविता...?
ठीक उत्तर नहीं दे पाये थे, तुम
या तो तुमने मेरी कविता को
कभी आँका ही नहीं!
अथवा मूल्यांकन की
योग्यता ही नहीं थी
मेरी कविताओं में।
मैं कहूँ...!
आदमी की तहों में
छिपे ढेर से रंगों को
जब तुम देखना शुरू करो
तो मेरी कविता के
बहुत नज़दीक
ख़ुद को पाओगे!

निशान

मैं शायद सागर तट हूँ
तुम्हारे बोल कभी-कभी
देह-मन पर इबारत से
लिख जाते हैं!
ये शब्द इतनी पैनी
क़लम से लिखे होते हैं
लगता है, कभी मिट नहीं पाएँगे
फिर, तुम्हारे प्यार का
एक ज्वार आता है
उसका वेग इतना प्रबल होता है
तुम्हारे कहे के निशान तक बह जाते हैं!
मैं फिर सागर के कगारों सी
वैसी की वैसी
ठीक पहले जैसी, हो आती हूँ!

नियति

चलो अच्छा हुआ
जो मैं नदी नहीं बनी
ये तो हम कहते हैं
सागर में विलीन होने को
नदी बहा करती है!
क्या नदी ने हमें बताया है...?
और भी अच्छा हुआ
कि मैं आकाश नहीं बनी
हमारी पहुँच से बाहर आकाश
हर वक़्त हमारी सीमाओं की
याद दिलाता-सा
उसकी असीम नियति की विडम्बना
क्या उसने हमें बतायी है...?
बहुत ही अच्छा हुआ
मैं पहाड़ नहीं बनी
बर्फ़, धुन्ध या धूप
अथवा घुप्प अँधेरा ओढ़े
चिरन्तन खड़े रहने की सज़ा
क्या प्रभु से माँगी होगी उसने...?
ईश्वर की असीम अनुकम्पा
मैं जंगल नहीं बनी
जाने कितने रहस्य लपेटे
घायल पशुओं के चीत्कार समेटे
सड़े बीजों की बासी गन्ध लिये

जंगल के दुःख का
हमें कहाँ पता है?
कितना सुकून देता है ये ख़याल
हमारी नियति भटकने की है
हवा की तरह यहाँ से वहाँ
वो और बात है
सोचते हैं किसी दिशा में जाने को
जा पहुँचते हैं किसी और दिशा में!
पर, ये दूरी हमने ही तय की है!
इसका आनन्द हमारा अपना है!!

परिणति

प्रभु!
मेरा ये जीवन है
तुम्हारा दिया उपहार!
कभी जब बहुत-सी शिकायतें
जमा होती जाती हैं
तब जी करता है,
लौटा दूँ तुम्हें कि
नहीं चाहिए मुझे
तुम्हारा ये उपहार
फिर, मेरा ही भीतरी मन
बताता है मुझे
अपमान होगा तुम्हारा
गर मैंने यूँ ही
वापस कर दी
तुम्हारी कीमती भेंट
लगता है तब मुझे
इसे और सजाना होगा
सँवारना, सुन्दर बनाना होगा
ताकि तुम जब इसे पाओ
तृप्त हो जाओ
क्योंकि तब ये होगा
तुम्हारे लिए, मेरा उपहार!

फ़ासले

तुमने कहा था–
ज़िन्दगी की तपती धूप में
झुलस रहे थे जब तुम
अचानक ही मैं मिल गयी थी
तब तुम्हें शीतल छाँव सी!
तुम्हें तो पता है–
साये तो हर पल
दरख़्त के आस-पास होते हैं!
फिर ऐसा क्यों हुआ?
फ़ासले बढ़ते ही रहे!
फ़ासले बढ़ते ही गये!!

पूँजी यही...!

ढेर-सी कोमल बातें, संवेदनाएँ
जब उसकी समझ से परे लगीं
तो उन्हें अच्छी तरह
बाँध-जूड़ कर
मन की भीतरी ताहों में सहेज लिया
और...एक ऐसे अनजाने मन की
तलाश शुरू हो गयी
जो उस माधुर्य के काबिल हो
उसका सही हक़दार हो
क्योंकि, यही तो एकमात्र पूँजी थी!

प्रत्याशा

तुम्हें बड़े प्यार से
एक उपहार दिया था मैंने
देते समय एक भारी
भूल हो गयी मुझसे।
साथ-साथ सोच लिया
तुम प्रसन्नता से भर उठोगे
मुझसे तोहफा पाकर
तुम्हारी आँखों में जब
वो खुशी नहीं दीखी मुझे
जो तुमसे प्रत्याशित थी
मैं और तुम दोनों ही
अफसोस में डूब गये
क़तई जरूरी नहीं कि
जो मैं दूँगी, वो तुम लोगे ही।
इस अपेक्षा में ही
ढेर-सी यातना बटोर ली
मैंने अपने लिए!

प्रयोग

कवि की कविता
अँधेरे में चलने सी होती है!
हाथ को हाथ न सूझे
फिर भी चलना होता है!
उसी तिमिर में
टटोलते-टटोलते
कभी रोशनी भी दीख ही जाती है
पर, यात्रा के आरम्भ में
प्रकाश की उपलब्धि
लक्ष्य नहीं होता!
इरादा होता है प्रयोग ही!

पुल

वैसे तो मेरे-तुम्हारे बीच
अपेक्षाओं के पुल
कब भुरभुरा कर ढहे
पता ही नहीं चला!

दोनों स्वावलम्बी थे
सम्बन्ध सरकते रहे
धीरे-धीरे!
बीच-बीच में भावुक मन
कभी चाबुक भी लगाता
अहम् को ठेस न लगे
सो, कोई सवाल नहीं उठाता!

एक सम्पर्क अभी भी
बचा रहता है हमारे बीच
दर्द को आपस में बाँटने का!
तुम कभी ग़ैरों से आहत होते
अपनी पीड़ा का टोकरा
मुझ पर उँड़ेल कर
हल्के हो आते!

मुझे जब दूसरे चोट पहुँचाते
तुम तक अपनी तक़लीफ का
ऐलान कर निश्चिन्त हो आती!

हमारे सम्बन्धों की बागडोर
इन्हीं धागों ने सँभाल रखी है।
धागे कितने मज़बूत हैं?
वक़्त ही जाने!

पुरानी चोटें

वैसे तो सभी का
कहा-सुना माफ किया
किसी से कोई
शिकायत शिकवा न रहा
पर, जैसे कोई पुरानी चोट
बदलते मौसम में पिरा उठे
वैसे ही कोई
भूली-बिसरी बात
जब-तब टीस जाती है!
शायद अनजाने ही
मुड़-मुड़ कर देख लेता है मन!

प्यार तुम्हारा...!

तुमने देखा तो होगा
लहरों का टूट कर
सागर की कगारों तक जाना
और, तट का उसे
बार-बार लौटाना
तुमने नहीं सोचा होगा
ठीक ऐसा ही है
तुम्हारा मेरे प्यार को
हर बार लौटाना
वो और बात है
जैसे ज्वार की नियति है
किनारों को फिर-फिर
छूने की कोशिश
वैसे ही मेरे
प्यार का स्वभाव है
तुम्हारे प्यार को
अनवरत पाने का प्रयास!

रसद

कभी अपना होना इतना
बेमानी-सा लगता है
जैसे रेगिस्तान की चिलचिलाती
धूप में ऊँट की सवारी
छाँव का कहीं
निशान भी नहीं
आसरा भी नहीं
तब तुम्हारा स्पर्श, मधुर छुवन
कुछ ऐसी सी लगे
जैसे रेगिस्तानी जहाज़ के हाथ
कुछ रसद लग गयी हो
बाकी की यात्रा का
सम्बल बन गयी हो!

रास्ते

बर्फ़ पर चलते हुए
मैंने हमेशा अपने ही
पदचिह्न छोड़े हैं!
आज, अचानक, अनजाने ही
छूटे हुए पाँवों के निशानों पर
चलना शुरू किया
देखा मैंने—
पाँव फिसलने लगे
लड़खड़ाने लगे
और सँभलते-सँभलते गिरने लगी!
लगा है—
जीवन में भी मुझे
अपने रास्ते खुद ही
गढ़ने होंगे!
लोगों के बनाये रास्तों पर
फिसलूँगी!
लड़खड़ाऊँगी!!
गिरूँगी!!!

शहर की सड़कें

सड़कों की सूरत में
शहर की भी होती हैं
धमनियाँ और नाड़ियाँ
एकदम इनसान की तरह!

आदमी की धमनियों का
रक्त प्रवाह जब रुके
उसे दाखिला लेना होता है अस्पताल में
सड़कों का रुके तो
शरीर की तरह शहर भी
चलना-फिरना बन्द कर देता है!

मेरे घर को जाने वाली
सड़क अचानक बन्द हो गयी है
लगता है मुझे रास्ता बदलना होगा!
कृत्रिम धमनियों के सहारे
सरकता-घिसटता आदमी
चल ही लेता है
मैं भी बदले रास्तों से
कभी न कभी घर पहुँच ही लूँगी!

शव घटनाओं के...!

मुझमें-तुममें
भीतर, बहुत भीतर
घटनाएँ, दुर्घटनाएँ
कब्रिस्तान की लाशों सी दबी पड़ी हैं।
उनके मलवे, जब
खोद-खोद कर निकालो
तो उनकी सूरत दीखती है।
वही कविता-कहानी की
सूरत धरती है।
हादसों का असर
कितना गहरा था
इसी पर काव्य की सूरत
निखरती है या बिखरती है
एक-एक कविता
यानि एक-एक मुर्दा!

स्मोकी माउण्टेन

धुँधुआते पहाड़ पर
हम ऊपर चढ़ते गये, चढ़ते गये
आकाशी लिफ्ट मन्थर गति से
चलती गयी, चलती गयी!
मैं हिचकोले खाती
अपने बचपन के
एक मेले में
जा पहुँची!
काठ के हिण्डोले में
झूलते-झूलते
जब मेरा हिण्डोला
ऊपर पहुँचा
तब लगा था
ये ही ऊँचाई
सर्वोच्च शिखर है।
आज लगा है
पहाड़ की चोटी
और आकाश
घुलमिल गये हैं।
ऊपर पहुँचते ही
पूरे चाँद ने
पहाड़ के पीछे से
झाँक कर
पहाड़ को बुरी तरह

चौंका दिया!
फिर पर्वत खिलखिला उठा
हम मुग्ध से ये दृश्य
देखते रह गये!

स्मृति

पार्थ!
नहीं आयी तुम्हारी बीमारी में
तुम्हें मौत से जूझते देखने
बहादुर जो नहीं थी, तुम्हारी तरह
कैसे देख पाती तिल-तिल मरते
उस पार्थ को, जो गाण्डीव उठाये
चुनौती-सा खड़ा था
पूजा प्रांगण में रक्त परीक्षण की
निकास नलिका लिये!

फिर सुना, तुम्हें अपनी सी
मज्जा मिल गयी थी!
कहाँ जाना था कि ये रोग
सामने से वार नहीं करता
लुक छिप कर घुसपैठियों सा
पैठ जाता है रक्त शिराओं में!

बींध डाली थी तुम्हारी
सारी देह तारों से
कह पाते तो तुम ज़रूर कहते
आज़ाद कर दो अब मेरी मुक्तात्मा को
शरीर का बन्धन सहा नहीं जाता होगा तुमसे!

तुम तो चले गये पार्थ!
छोड़ गये ढेर-सी याद
हम सबके पास!

सुजाता के लिए...!

ताज़ी हवा के झोंके-सा
व्यक्तित्व है तुम्हारा
ना, तुम बहुत सुन्दर तो नहीं
हाँ, आस-पास के परिवेश को
खुशनुमा ज़रूर बना लेती हो
अपने भीतरी सौन्दर्य की छटा
बाहर बिखेर देती हो
आज, जब सब दूसरों का जीना
दूभर किए बैठे हैं
तुम लोगों का जीना
आसान बनाने का
बीड़ा उठाये बैठी हो
काम कठिन है
पर, तुम कर ले जाती हो!

सूरजमुखी

सूरजमुखी सी हो आयी हूँ
मैं, तुम्हारे प्यार में
और तुम, सूरज!
तुम्हें देखा तो खिल उठी
न देखा, तो मुर्झा गयी!
तुम्हारे प्यार की ये
रेशमी, ऊष्म छुअन
मुझे छूती रहे
और मेरी सुनहरी पांखुरियाँ
उसी से झिलमिलाएँ
ये ही मैं देखूँ
ये ही मैं चाहूँ!

स्वीकृति

पहले-पहल जब तुमसे
मालूम हुआ था मुझे
नकारात्मक उत्तर तुम्हें
पीड़ित करते हैं कहीं से!
तुम्हारी ईमानदारी मुझे
भीतर तक छू गयी!
प्यार के साथ सम्मान भी
जग उठा तुम्हारे लिए!
वर्षों बाद आज
वही बात जब
मुझे भीतर तक
तोड़ती गयी
तो मेरा स्वयं से
सवाल उठा
जो बात कभी
सम्मान का कारण थी
आज कैसे वही
अपमान का कारण बनी?
भीतर के मन्थन से
उत्तर भी मिला मुझे
तुम जो किसी से
'न' स्वीकार पाते नहीं
तुम्हारी परम अपनी
'मैं' को सारी उम्र
फिर कैसे नकारते रहे?

ताड़ के पेड़

ताड़ के पेड़ की खुसफुसाहट
कोई गहरे राज़ की बात
कह गयी मेरे कानों में!

प्रकृति के राजकुमार ने
बुलाया था सागर के
किनारे बसे आशियाने में!

मैं जलपरी-सी
उतरती गयी, उतरती गयी
समुद्र महल में!
देखा ढेरों पंछियों के
जलतरंग बज रहे थे वहाँ
उन सुरों पर नाच
रही थीं लहरें वहाँ
और मैं, उस जलसे की
सम्राज्ञी-सी बैठी रही वहाँ!

[कुमारकॅम (कोचीन) की यात्रा के दौरान लिखी कविता।]

तलाश

दूर और पास के
एक-एक करके
सारे रिश्ते-नाते
उसके हाथ की पकड़ से
छूटते जा रहे थे!

अब वह उनकी
तलाश में निकल पड़ा था
ठीक वैसे—
जैसे गली में
गोलियाँ खेलने वाले
बच्चे के हाथ से
गोलियाँ छिटककर
दूर जा गिरी हों!
बच्चा, भूख-प्यास की
सुध-बुध बिसारे
गोलियाँ ढूँढ़ता फिरे!

तसलीमा नसरीन : एक प्रतिक्रिया

जितना बदनाम-सा है ये नाम
उतना ही सम्भ्रान्त-सा है वो व्यक्तित्व
कैसा लगता है तुम्हें मेरा लेखन, तुमने पूछा
बहुत भीतरी-अँधेरी परतें खोलता है
तुम्हारा लेखन, कहा मैंने!
इतनी अँधेरी तहें कि उन पर
यक़ीन करने का जी भी नहीं होता मेरा!
वही तुम्हारे लेखन की ख़ास बात है, कहा तुमने!

तुम्हारी उसी ख़ास बात से हमारी
मुलाकात ख़त्म हुई!

पर क्या वाक़ई ख़त्म हुई बातचीत हमारी?
मेरे भीतर कहीं देर तक चलती रही
एक प्रतिध्वनि सी...!

थमा-सा घर

कभी-कभी, कोई-कोई घर
कभी चलता है
कभी थमता है
ठीक वैसे ही, जैसे रेलगाड़ी
स्टेशन पर रुक जाती है
यात्रियों को लेती है
फिर चल पड़ती है!
थमा हुआ घर
प्रतीक्षालय-सा होता है
उसे भी मुसाफिरों की तरह
घर के लोगों का इन्तज़ार होता है!
घर के सदस्य आये
और वो चल पड़ा
लोग गये
तो घर रुक गया!

ठहरी यादें

यादों के चेहरों पर
झुर्रियाँ नहीं पड़तीं कभी
गुज़रते वक्त के साथ
उम्र भी नहीं बढ़ती उनकी!
जब चाहे हाथ बढ़ाओ
और, छू लो उन्हें!
बड़ी वफ़ादार होती हैं, ये यादें
कोई साथ दे न दे
यादें ज़रूर साथ देती हैं!
सोचा तो था,
तुम्हारे चेहरे पर
वक़्त की धूल जम गयी होगी
शायद मकड़ी के जाले होंगे
स्मृति के कोनों पर!
पर नहीं स्वच्छ जल में
पड़े दरख़्तों के प्रतिबिम्ब से
तुम्हारे चेहरे को
वैसा का वैसा देख पाती हूँ!

द ब्लेयर्स

'द ब्लेयर्स' यही नाम है
हमारे इस घर का
घर की सूरत में
उद्यान-सा महकता!
चारों ओर खिले हैं फूल ही फूल
रंग-बिरंगे गुलाबी, बैंगनी और लाल
लगता है बगीचे में
रह रही हूँ आजकल!
घर के सामने लगा फव्वारा
ले आया है मुझे
अपने बचपन के घर में!
संगमरमर से बने उस
फव्वारे से जुड़ी थी
मेरी नन्ही-नन्ही यादें!
इस इस्पाती फव्वारे में
कुछ तो है जो मुझे
खींच कर अपने पुराने
घर तक ले आया है।
स्मृति का बहता जल है शायद
या फिर हाइड्रेंजिया के फूल
मुझे अपनी चिरपरिचित
माधवी लता तक ले आये हैं।
तब की बनायी माधवी लता की माला
अब भी मन के किसी कोने में
ज्यों की त्यों सहेजी हुई है!
फूल भी नहीं झरे, सुगन्ध भी नहीं मरी!

टूटे रिश्ते

उसके और तुम्हारे
सम्बन्ध टूट गये
उसके दिए सारे उपहार
तुमने लौटाये
तुम्हारी दी सारी सौगातें
उसने वापस कर दीं
चलते-चलते उसने
तुम्हें एक आहत मुस्कान दी
क्या तुम उसे लौटा पाये?

उधेड़-बुन

जाते समय तुमने
मुड़ कर देखा था
क्या कहना चाहा था?
क्या शब्द नहीं दे पाये थे
या लफ्ज़ कम पड़ गये थे
या तय नहीं कर पा रहे थे
जो तुम्हें कहना है
वो लफ्ज़ों में बयाँ होगा या नहीं।
या बात ज़ुबान तक आते-आते
बिदाई की घड़ी आ गयी!
मेरी सारी शाम इसी उधेड़-बुन में कटी!

उड़ान

मेरे नन्हे!
आज अचानक ही
तू बड़ा हो गया
मालूम तो था मुझे
जो देर तक अपना
उड़ान रोक रखा है तूने
डैने जब फड़फड़ाएगा
बहुत ऊँचाई तक जाएगा
पर, कब, पता नहीं था
अब मुझे पता लग गया है
तेरे लौटने तक मैं अपने
बसेरे में ममता की
ऊष्मा बनाये रखूँगी!

विमान

विमान की खिड़की से झाँक कर देखा—
आसमानों में फव्वारे भी होते हैं।
बादलों ने यहाँ झरने का रूप धर लिया है।
कुछ पलों को मन उसमें नहा आया है।
धुला-धुला, उजला-सा हो गया है।

और, एक बार फिर से बाहर देखा—
सारा दृश्य बदल गया था
अब मेघ शिशु जंगल में तब्दील हो आये थे
ढेर से बादलों ने, ढेरों जंगली जानवरों की
शक्ल ले ली थी!
इस पक्की उम्र में
मुझे उनसे डर क्यों लग रहा है?

ये अनिश्चितता का अरण्य
कब ख़त्म होगा?
कभी न कभी तो होगा ही होगा!
तब शुरू होगा सिलसिला उपवनों का!

विष कन्या

अपने बचपन में कहीं
विष कन्याओं की कहानियाँ सुनी थीं!
शैशव काल में, उनके दूध में
थोड़ा-थोड़ा ज़हर घोल कर
घुट्टी में पिलाकर
विष की आदत डालते थे, उन्हें!

शिव, सागर-मन्थन का सारा विष
एक घूँट में पी गये थे
भाँग की लत ने ही
उनके लिए आसान किया होगा
एक साथ इतना सारा ज़हर पीना!

मुझे भी विष की थोड़ी-थोड़ी
आदत बनानी होगी
ताकि, वक्त पड़ने पर
स्थितियों का सारा हलाहल
गले के नीचे उतार सकूँ!

यात्रा

वर्षों साथ रही तुम्हारे
एक सत्य मेरी पकड़ से
हमेशा फिसलता रहा
क्या चीज़ है जो मुझे
तुमसे मिल नहीं पायी!
कहने को तो तुमने
बहुत कुछ दे डाला
फिर क्या था
जो छूट-सा गया
मेरे बारे में तुमने
सिर्फ वही बताया
जो मुझमें नहीं था
मुझमें जो था
वो तुम्हारी पकड़ में
आ नहीं पाया
अब मैं उस तलाश में
निकल पड़ी हूँ
कि मुझमें क्या है
शायद वो मेरी पकड़ में आ जाए!